International Journal of Sanskrit Research 2018; 4(3): 153-155

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2018; 4(3): 153-155
© 2018 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 28-03-2018
Accepted: 29-04-2018

अनिल कुमार
शोधार्थी, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोटद्वार, पौड़ी गढ़वाल, उत्तराखंड, भारत

Correspondence
अनिल कुमार
शोधार्थी, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोटद्वार, पौड़ी गढ़वाल, उत्तराखंड, भारत

श्रीमदभागवत में प्रतिपादित भक्ति

अनिल कुमार

प्रस्तावना

भजनं भक्तिः भज्यते अनया इति भक्तिः भजन्ति अनया इति भक्तिः इत्यादि भक्ति शब्द की व्युत्पत्तियाँ की जा सकती हैं।

भक्ति शब्द का वास्तविक अर्थ सेवा है, वह अनेक प्रकार से सम्पन्न होती है, जिसमें किसी भी प्रकार की भक्ति है, उसे भक्त कहते हैं, भक्ति तथा भक्त के अनेक भेदोपभेद शास्त्रों में कहे गये हैं। श्रीमद्भागवत महापुराण में नारद जी भक्ति के विषय में कहते हैं कि–

इदं भागवतं नाम यन्मे भगवतोदितम्।
संग्रहोऽयं विभूतीनां त्वमेतद् विपुलीकुरु।।
यथा हरौ भगवति नृणां भक्तिर्भविश्यति।
सर्वात्मन्याखिलाधार इति संकल्प्य वर्णय।। [1]

अर्थात् यह भागवत नामक महापुराण है जिसका उपदेश भगवान नारायण ने मुझे दिया था, मैंने इसमें भगवान के अवतारों का संक्षेप में वर्णन किया है, अब तुम इसका विस्तार करो; परन्तु विस्तार करते समय इसका ध्यान रखना कि जिस प्रकार सभी की आत्मा में समस्त जगत के आधार स्वरूप भगवान श्रीहरि में मनुष्यों की भक्ति हो, उसी प्रकार का संकल्प कर नारायण की भक्ति का वर्णन करो।

भगवान नारायण के भक्तों में नारद जी का प्रमुख स्थान है, ब्रह्मा जी के मानस पुत्र नारद अपने पिता की आज्ञा शिरोधार्य कर भगवत भक्ति से ओत–प्रोत होकर जीवों को भगवद् भक्ति से प्रेरित करते हैं, नारद जी के विषय में चर्चा है कि ''नारदाद्देवदर्शनात्'' अर्थात् नारद जी जिसको प्राप्त हो जाते हैं, उसे भगवान के दर्शन अवश्य होते हैं, श्रीमद् भागवत महापुराण में भक्ति के प्रमुख बारह आचार्यों के नाम गिनाये गये हैं।

''स्वयम्भूर्नारदः शम्भुः कुमारः कपिलो मनुः
प्रह्लादो जनको भीष्मो बलिर्वैयासकिर्वयम्।।
द्वादशैते विजानीमो धर्म भागवतं भटाः। [2]

भक्ति के बिना किसी भी मनोरथ की प्राप्ति नहीं हो सकती है, यह सर्वानुभवसिद्ध है, भगवद् भक्ति की प्राप्ति जैसा परमकल्याण कारक विषय भी भक्ति के बिना सम्भव नहीं है, भक्ति की विशेषता यह है कि भगवान भी अपने भक्त का भजन करते हैं और भक्त भगवान का ''ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्'' के अनुसार भगवान भी भक्त का भजन करते हैं, ''भगवति मन स्थिरीकरणं भक्तिः'' अर्थात भगवान में चित्र की स्थिरता को भक्ति कहते हैं। संसारिक प्राणि यदि श्रद्धा व प्रेम से ईष्ट का भजन नाम उच्चारण, संकीर्तन जिस भी माध्यम से हरि नारायण का चिन्तन करते है प्रभु का नाम गान व स्मरण करने से हृदय पवित्र हो जाता है जैसे–

''प्रविष्टः कर्णरन्ध्रेण स्वानाभाव सरोरूहम्
धुनोति शमलं कृष्णः सलिलस्य यथा शरत्।। [3]

भक्ति की निरन्तरता से पापी, दुराचारी मानव हृदय से, मनसे ऐसे पवित्र हो जाते हैं जैसे तेज बारिष के जल से सरोवर का पुराना व गन्दा, दूषित जल बाहर निकलकर उसमें नूतन स्वच्छ निर्मल जल भर जाता है, उसी प्रकार भक्ति युक्त चित्त प्रभुनाम स्मरण से निरन्तर पवित्रता को प्राप्त करता है।

विशय भेद से भक्ति का स्वरूप भेद व नाम भेद भी हो जाता है, पूजेश्वनुरागो भक्तिः पूज्य वर्ग में अनुराग का नाम भक्ति है, इस वचन के अनुसार वह अनुरक्ति भगवद् विषयिणी, शास्त्र विषयिणी, गो–ब्राह्मण तथा माता–पिता विषयिणी होने पर भक्ति पद वाच्य होती है, दास्य वात्सल्य, मित्र स्नेह विषयिणी सख्य–रति तथा सेवा सेवक भाव सम्बन्धिनी दास्य रति (भक्ति) कहलाती है इसके आगे चलकर तत्वमसि के उपासक वेदान्ती ल्वेण ''स्वस्वरूपानुसन्धानं भक्तिरित्य भिधीयते।। अपने स्वरूप का अनुसन्धान ही भक्ति है, इस भक्ति के लक्षण पर ही चित्त टिकता है, वैसे तो सब प्रकार की उपास्यगत रति परब्रह्म परमात्मा का ही आह्वान करती है क्योंकि–

अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः
तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत् परुषं परम्।। [4]

परब्रह्म परमात्मा का अनुराग एवं श्रद्धापूर्वक भजन–मोक्ष, काम अकाम् और निष्काम सभी के द्वारा अनुष्ठेय है, अतएव–

तस्मै व हेतोः प्रयतेत कोविदो न लभ्यते यद्धर्मतामुपर्यधः।

बुद्धिमान को उसी के लिए प्रयत्न करना चाहिए, जिससे जन्म–मरण के बन्धन का पाश टूट जाय, जन्म–मरण पाश का उद्देश्य परब्रह्म परमात्मा के अनुग्रह के बिना सर्वथा असम्भव है, उन्हीं के अनुग्रह सम्पादनार्थ भक्तिमार्ग का अवलम्वन आवश्यक है, ''आत्मनस्तु कामाय सर्व प्रियं भवति''– इस श्रुति के अनुसार आत्मा ही परम प्रेमास्पद होने के कारण अन्वेषण (स्वरुपावस्थिति) ही पराभक्ति है, अतएव परा और अपरा भेद से भक्ति दो प्रकार की बताई–जाती है, पराभक्ति स्वरुपानुसन्धान और अपरा–भक्ति देवादिविषयिणी है, श्रीमद्भागवत में भगवान श्री कृष्ण ने परम भागवत उद्धवजी को उपदेश देते हुए कहा है–

''यत् कर्मभिर्यत् तपसा ज्ञानवैराग्यतष्च यत्
योगेन दानधर्मेण श्रेयोभिरितरैरपि
सर्वं मद्भक्तियोगेन यद्भक्तो लभतेऽसा।। [5]

कर्म, तपस्या, ज्ञान, वैराग्य, योग, दान धर्म तथा तीर्थयात्रा वृत आदि साधनों के द्वारा जो प्राप्त है, मेरा भक्त, भक्तियोग के द्वारा वह सब अनायास ही प्राप्त कर लेता है, वैदिक युग के ज्ञान–यज्ञ और उपनिषद के अरूप की ध्यान धारणा के स्थान में पौराणिक युग में सर्वसाधारण के लिए उपयोगी एक नवीन उपासना–पद्धति प्रचलित हुई, मृत्तिका, प्रस्तर या धातु से निर्मित प्रतिमा में देवता के आविर्भाव की भावना करके उस विग्रह पाद्य, अर्घ्य, धूप, दीप, गन्ध, पुष्प और नैवेद्य आदि के द्वारा अर्चना करने की विधि प्रवर्तित हुई।

य आशुह्रदयाग्रन्थि निजिर्हीशुः परात्मनः।
विधिनोपचरेद् देवं तन्त्रोक्तेन व केशवम्।।
लब्धानुग्रह आचार्यात्, तेन संदर्भितागमः।
महापुरूष मभ्यर्चेन्मूर्त्याभिमतयाऽऽत्मनः।। [6]

जो साधक जीवात्मा की ह्रदय ग्रन्थि का शीघ्र छेदन करने की इच्छा करते हैं, वैदिक और तान्त्रिक विधि के अनुसार अभीष्ट देवता की पूजा करें, आचार्य से दीक्षा ग्रहण करके तथा उनके द्वारा प्रदर्शित अर्चना विधि को जानकर अपनी अभिगत मूर्ति के द्वारा परम पुरूष की पूजा करें, पुराणशास्त्र में भक्ति मार्ग की साधना के अन्तर्गत अभीष्ट देवता के उपासनामूलक जो ''क्रियायोग'' प्रवर्तित हुआ है, तद्नुसार भक्त प्रतिमा के माध्यम से भगवान की सेवा कर सकता है, उनको स्पर्श कर सकता है, उनको भोग लगा सकता है, उनका प्रसाद ग्रहण कर सकता है, उनके साथ वार्तालाप कर सकता है तथा इस प्रकार की आपद–विपद में उनके ऊपर निर्भर रह सकता है, इस क्रिया योग के विधान के अनुसार देवता का मन्दिर निर्माण विग्रह स्थापना, पूजा–अर्चना आदि करने पर साधक मुक्ति–युक्ति दोनों को ही प्राप्त कर कृपार्थ हो जाता है।

प्रतिश्ठया सार्वभौमं सद्मना भुवनत्रयम्
पूजादिना ब्रह्मलोकं त्रिभिर्मत्साम्यतामियात्
मामैव नैरपेक्ष्येण भक्तियोगेन विन्दति
भक्तियोगं स लभते एवं यः पूज्येत् माम्।। [7]

मेरा भक्त विग्रह–प्रतिष्ठा के द्वारा सार्वभौमपद्, मन्दिर निर्माण के द्वारा त्रिभुवन का स्वामित्व, पूजा आदि के द्वारा ब्रह्मलोक तथा उपर्युक्त तीनों कार्यों के द्वारा मेरी समता प्राप्त करता है और निष्काम भक्ति योग के द्वारा मुझको ही प्राप्त करता है। जो उपयुक्त रीति से मेरी पूजा करता है, वह भक्तियोग को प्राप्त करता है, पुराणशास्त्र के मत से भगवान भक्तों के प्रति अनुग्रह प्रकट करने के लिए ही मनुष्य के रूप में अवतीर्ण होते हैं तथा इस प्रकार की लीलायें करते हैं, जिनका श्रवण और कीर्तन करके जीव सहज ही भगवत्परायण हो सकता है, यह लीला–रस आस्वादन ही भक्ति का प्रकृष्ट साधन है।

अनुग्रहाय भक्तानां मानुषं देहमास्थितः।
भजते तादृशीः क्रीड़ा याः श्रुत्वा तत्परो भवेत्।। [8]

इस प्रसंग में भागवत में कुन्तीदेवी की उक्ति विशेष रूपों से स्मरणीय है–

श्रृण्वन्ति गायन्ति गृह्णयन्त्यभीक्ष्णशः स्मरन्ति नन्दन्ति, तवेहितंजनाः
त एव पश्यन्त्यचिरेण तावकं, भवप्रवाहोपरमं पदाम्बुजम्।। [9]

हे श्री कृष्ण ! जो भक्तजन तुम्हारे चरित्र का श्रवण गान उच्चारण या सदा स्मरण करते हैं तथा दूसरों के कीर्तिन पर जिनको आनन्द प्राप्त होता है, वे शीघ्र तुम्हारे चरणारविन्द का दर्शन करने पर समर्थ होते हैं, जिसके द्वारा शीघ्र उनकी जन्म परम्परा सदा के लिए समाप्त होती है।

श्रीमद् भागवत में भक्ति साधना के चरमोत्कर्ष का परिचय प्राप्त होता है, इसमें भक्ति केवल मुक्ति की प्राप्ति का साधन मात्र नहीं है अपितु भक्ति के चरम परिणामस्वरूप प्रेम का विकास हुआ है, वह कभी मुक्ति की इच्छा नहीं करता सदा भगवत्सेवा के परमानन्द में रत रहने की प्रार्थना करता है।

न कामयेऽन्यं तव–पादसेवनादकियनप्रार्थ्यतमाद् वरं विभो।। [10]

हे विभो ! अकिान भक्त का उच्चतम प्रार्थ्य तुम्हारे श्री चरणों की सेवा है, मैं वही चाहता हूँ, उसके सिवा अन्य वर की प्रार्थना नहीं करता हूँ।

श्रीमद्भागवत महापुराण में भक्त प्रहलाद द्वारा नवधा भक्ति का वर्णन निम्न प्रकार से की है।

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्
अर्चनं वन्दनं दास्यं सरव्यमात्मनिवेदनम्।। [11]

श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद सेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्म निवेदन यह नौ प्रकार की साधन भक्ति है और प्रतिक्षण वर्धमान प्रेमाभक्ति साध्य भक्ति है। संसार में स्वतः प्रवाहित गंगा की धारा के समान जो मनोगति मेरे गुण–श्रवणमात्र से फलानुसन्धान रहित या भेद दर्शन विहीन होकर सर्वान्तर्यामी मुझ पुरुषोत्तम में अविच्छिन्न भाव से निहित होती है वह मनोगतिरूपा भक्ति ही

भक्ति ही निर्गुण भक्तियोग का स्वरूप है, यह अहैतुकी निष्काम भक्ति ही प्रेम है, इसको प्राप्त करने पर साधक भगवत्सेवा छोड़कर और कुछ भी नहीं चाहता, यहां तक कि मुक्ति की भी प्रार्थना नहीं करता–

सालोक्यसार्ष्टिसामीप्य सारूप्यैकत्वमप्युत।
दीयमानं न गृहणन्ति बिना मत्सेवनं जनाः।। [12]

जिनको इस प्रकार निर्गुणा भक्ति प्राप्त हो गई है, उनको सालोक्य–सार्ष्टि (ईश्वर के समान ऐश्वर्य सम्पन्नता) समीप्य, सारूप्य तथा सायुज्य यह पांच प्रकार की मुक्ति देने पर भी वे मेरी सेवा के सिवा और कुछ भी नहीं ग्रहण करता है, तब वह सर्वभूतों के साथ एकात्मकता का अनुभव करता है, भगवान ही जीवों के आत्मस्वरूप होकर विराजमान है, अतएव वह साधक अपना–पराया, शत्रु–मित्र आदि किसी प्रकार का भेद–भाव किसी के साथ नहीं रखता, सर्वोत्तम भक्त का लक्षण इस प्रकार है–

सर्वभूतेषु यह पश्येद भगवद्भावमात्मनः।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भगवतोत्तमः।। [13]

जो सर्वभूतों में आत्मारूपी भगवान का दर्शन करता है तथा आत्मारूपी भगवान के भीतर सर्व भूतों को देखता है वही श्रेष्ठ भागवत है।

संदर्भ

1. श्रीमद्भागवत 2/7/51–52
2. श्रीमद्0भ0 06–03–20, 21
3. श्रीमद् भा0 2–8–5
4. श्रीमद् भागवत् 2/3/10
5. श्रीमद् भगवत् 11–20–32
6. श्रीमद भागवत 11–3–47–48
7. श्रृीमः भागवत–11–27–52–53
8. श्रीमद् भगवत 10–33–36
9. श्रीमद् भागवत 1–8–36
10. श्रीमद् भागवत 10–51–56
11. श्रीमद् भागवत 7–5–23
12. श्रीमद् भागवत 3/21/13
13. श्रीमद् भागवत–11/2/45